पार्श्व प्रतिष्ठान ग्रंथमाला : ग्रन्थाङ्क-२

लक्ष्मीचंद्र-कृत

अणुपेहा

सम्पादक
डॉ. (श्रीमती) प्रीतम सिंघवी

प्रकाशक
पार्श्व शैक्षणिक और शोधनिष्ठ प्रतिष्ठान
अहमदाबाद
१९९८

Aṇupehā (also called Dohā-velli), in Post-Apabhraṁśa language is written by the Jaina Muni Lakṣmīchandra. It is a noteworthy contribution to the later Jaina literature. On twelve Anuprekṣas or Bhāvnās in clear and simple language. These Bhāvnās (reflections) increase man's detachment from the world, protect him from harmful tendencies and spurt his efforts towards final emancipation. They are conceived as aids to spiritual progress and are means of purification of thoughts and activities.

It has been edited on the basis of its only known Manuscript from Jaipur.

पार्श्व प्रतिष्ठान ग्रंथमाला : ग्रन्थाङ्क-२

लक्ष्मीचंद्र-कृत

अणुपेहा

PARSHWA INTERNATIONAL FOUNDATION
FOR
RESEARCH AND EDUCATION

Academic Advisory Council

1. **H. C. Bhayani**
2. **Madhusudan Dhaki**
3. **Nagin Shah**

President

S. S. Singhvi

: Office :

4-A, Ramya Apartment,
Opp. Ketav Petrol Pump,
Polytechnic,
Ambawadi, Ahmedabad-380 015.

Phone : (079) 6562998

E-mail : singhvi@ad1.vsnl.net.in

पार्श्व प्रतिष्ठान ग्रंथमाला : ग्रन्थाङ्क-२

लक्ष्मीचंद्र-कृत

अणुपेहा

सम्पादक

डॉ. (श्रीमती) प्रीतम सिंघवी

(M.A., Ph.D., N.W.D.)

प्रकाशक

पार्श्व शैक्षणिक और शोधनिष्ठ प्रतिष्ठान

अहमदाबाद

१९९८

Aṇupehā

by

Lakṣmīcandra

© Pritam Singhvi

First Edition 1998

Price : Rs. 25-00

Publisher :

Dr. S. S. Singhvi
Managing Trustee
Pārśva International Research and Educational Foundation,
4-A, Ramya Apartment, Opp. Ketav Petrol Pump,
Polytechnic, Ambawadi, Ahmedabad-380015
Phone : 6562998

Distributer :

Sarasvati Pustak Bhandar
112, Hathikhana, Ratanpol,
Ahmedabad-380001
Tele. : 5356692

Parshva Publication
Jhaveri vad, Relief Road,
Ahmedabad-380001

Printed by : Krishna Graphics
Kirit H. Patel
966, Naranpura old village,
Ahmedabad-380 013 * (Phone : 7484393)

परम श्रद्धेय हरिवल्लभ भायाणीजी

को

सादर समर्पित

प्रकाशकीय

डा. प्रीतम सिंघवी का प्राकृत और जैन साहित्य में चालु शोध-कार्य के फलस्वरूप पार्श्व इन्टर्नेशल की प्रकाशनप्रवृत्ति का शुभारंभ हुआ है। साहित्यरचना में उत्तरकालीन अपभ्रंश में जो जैन परंपरा में अध्यात्मवादी और धार्मिक रचनाएं लोकोपदेश की दृष्टि से हुई हैं, उनमें से बहुत कम अब तक प्रकाश में आयी हैं। प्रीतमजी ने इस विषय में जो कार्य का प्रारंभ किया है वह अन्यों को भी प्रेरित करेगा एसी हम आशा रखते हैं। पार्श्व शोधनिष्ठ और शैक्षणिक ग्रंथमाला उनकी यह पुस्तक सानंद और साभार प्रकाशित करती है।

हरिवल्लभ भायाणी
सभ्य, विद्याकीय परामर्श समिति

एस. एस. सिंघवी
अध्यक्ष

स्वागत-वचन

बौध वज्रयानी-सहजयानी सिद्धों की जो लोकाभिमुख अध्यात्मवादी साहित्य-रचना की प्रवृत्ति अपभ्रंश भाषा में सातवीं-आठवीं शताब्दी से चली उससे प्रेरित हो कर जैन परंपरा में भी 'परमात्म-प्रकाश' आदि कई दोहाबद्ध रचनाओं का निर्माण हुआ। लौकिक उपदेश के लिये की गई ऐसी शैली की धार्मिक रचनाएं उत्तरकालीन उपभ्रंश और प्रारंभिक प्रादेशिक भाषाओं में होती रहीं। इस विषय में शोध-कार्य बहुत कम हुआ है। एकाध अशुद्ध हस्तप्रत के आधार पर पाठ तैयार करने के और ठीक अर्थघटन के काम में कई कठिनाइयां रहती हैं। डा. प्रीतम सिंघवी ने इस शोधक्षेत्र में उत्साह के साथ पदार्पण किया है, उसके लिये मेरा धन्यवाद और आशीर्वाद।

अहमदाबाद
१९९८

ह. भायाणी

लक्ष्मीचंद्र-कृत अणुपेहा

अनुक्रम

भूमिका	१०
अणुपेहा : मूलपाठ, अनुवाद	१६
मूलपाठ की शुद्धि	२८
टिप्पण	३०
दोहानुक्रमणिका	३१
संदर्भ सूचि	३२

भूमिका

इस 'अणुपेहा' की आधारभूत हस्तप्रति आमेर शास्त्र भंडार (जयपुर) से प्राप्त हुई है ।

उस हस्तप्रत की झेरोक्स् कापी से हमने पाठ संपादन किया है । प्रति में ६ पत्र हैं । पहले और अन्तिम पत्र पर क्रमशः ११ और ७ पंक्तियां हैं, और बाकी के चार पत्र पर १५ पंक्तियां हैं । और प्रत्येक पंक्ति में सरासरी २२ से ३० अक्षर हैं । अक्षर बड़े हैं और लेखन स्वच्छ है ।

प्रति का आदि :-

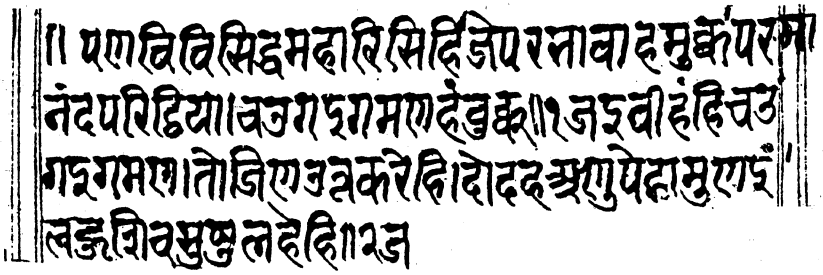

प्रति का अन्तः

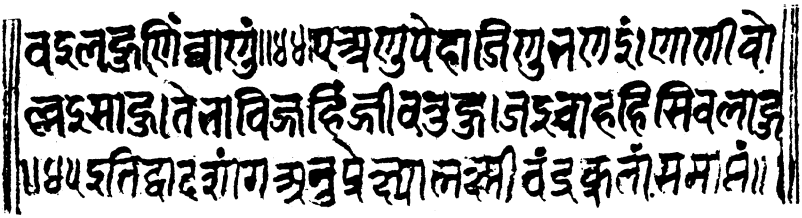

संपादन

इस कृति की यह एक ही प्रति ज्ञात है । भाषा की दृष्टि से प्रति कई स्थानों पर अशुद्ध है । कहीं-कहीं छोटे लेखनदोष भी हैं । जैसे कि कहीं अनुस्वार के बिंदु के बारे में गलती हो, कहीं कोई अक्षर नहीं लिखा गया हो इत्यादि । ये सुधार लिये हैं । कहीं-कहीं जो रूप शब्द आदि की अशुद्धि मालूम हुई है उनकी शुद्धि की है और उसकी सूचि अन्त में दी गई है ।

कृति

रचना का नाम कवि ने स्वयं 'अणुपेहा' (दो. ४५) (= सं. अनुप्रेक्षा) या 'दो-दह-अणुपेहा' (दो. २) अर्थात् 'द्वादश अनुप्रेक्षा' बताया है। रचना का प्रमाण ४५ दोहे हैं । कृति के आरभ में मंगलरूप पहला एक दोहा है। दूसरे दोहे में अनुप्रेक्षा का महत्त्व बताया गया है। तथा अन्तिम दोहे में उपसंहार तथा कर्ता का नामनिर्देश किया है।

विषय तथा निरूपण

विषय की दृष्टि से देखें तो जीवनशुद्धि में विशेष उपयोगी बारह विषयों को चुनकर उनके चिन्तन को बारह अनुप्रेक्षाओं के रूप में गिनाया गया है।

अनुप्रेक्षा को भावना भी कहते हैं। भावना ही पुण्य-पाप, राग-वैराग्य, संसार व मोक्ष आदि का कारण है, अतः जीव को सदा कुत्सित भावनाओं का त्याग करके उत्तम भावनाएँ भानी चाहिए।

महर्षि पतंजलि ने 'योगदर्शन' (व्यास भाष्य) में भावना को नदी की धारा से उपमित किया है–

"चित्तनदी नाम उभयतो वाहिनी।" अर्थात् चित्त रूप नदी दोनों ओर बहती है–ऊपर भी, नीचे भी, शुभ में भी, अशुभ में भी। नदी की धारा को जिधर मोड़ दिया जाय, उधर ही उसका प्रवाह होने लगता है। इसी प्रकार भावना है। यदि भावना का प्रवाह शुभ चित्तवृत्तियों से प्रेरित रहा, उच्च और पवित्र भावों के साथ चलता रहा तो वह जीवन में सुख और शान्ति का उपवन खिला देगी।

यह विषय बहुत महत्त्व का जैन परंपरा में रहा है। जैन तत्त्वों के अनुचिन्तन की यह परंपरा ठेठ आगम से शुरु होती है। आगम में सबसे प्राचीन 'आचारांग' ही माना जाता है। 'आचारांग' के अन्त में भावनाओं का वर्णन है। उसके पश्चात् 'उत्तराध्ययन-सूत्र' में बारह भावनाओं का वर्णन किया गया। बादमें प्रकीर्णक इत्यादि में भावनाओं का वर्णन मिलता है।

दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में विविध भाषाओं में अनुप्रेक्षा या भावना को लेकर बहुत सी रचनाएँ हुई है। 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' प्रो.

वर्णी द्वारा सम्पादित पृष्ठ ७३ से ८० पर भावना का सविस्तार व्यौरा मिलता है। दिगम्बर परंपरा में कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रंथों में तथा कार्तिकेयानुप्रेक्षा[1] ये दोनों प्रमुखतया है। इस विषय पर कार्तिकेय स्वामी[2]ने विस्तार से परिचय दिया है। 'तत्त्वार्थसूत्र' 'राजवार्तिक' 'श्लोकवार्तिक'—इनका उल्लेख किया जा सकता है। बाद में भी कई साहित्यिक रचनाएँ मिलती है। दुलीचन्द जैन ने भी इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। इससे हम समझ सकते हैं कि यह एक स्वतंत्र अध्ययन का विषय है। यहाँ पर तो हमारा लक्ष्य सीमित है। इस सम्पादन से हम अनुप्रेक्षा साहित्य की एक अनु-अपभ्रंशकालीन दोहा-बद्ध रचना को विद्वानों के ध्यान पर लाना चाहते हैं। 'परमात्मप्रकाश', 'योगसार', 'दोहापाहुड', सावयधम्मदोहा-ऐसी रचनाओं की परंपराओं में बारह 'अणुपेहा' है।

यह लक्ष्मीचन्द की कृति में जो बारह अनुप्रेक्षाओं के बारे में बताया है उसका क्रम इस प्रकार है :-

कृति में पहला दोहा मंगलरूप है जिसमें सिद्धात्माओं को वंदन किया गया है तथा दूसरे दोहे में अनुप्रेक्षा का महत्त्व बताया गया है।

दोहा ३ से ४ तक अनित्य भावना
दोहा ५ से ६ तक अशरण भावना
दोहा ७ से ८ तक संसार भावना
दोहा ९ से १० तक एकत्व भावना

---

1. Kārttikeyānuprekṣa.
Printed with Hindi Commentary in Bombay 1904. cf Peterson, Report iv, P. 142
Bhandarkar Report 1883-84, P. 113. Hiralal
Karttikeya Svāmin, whose Kattigeyānuprekkhā (Kārttikeyānuprekṣa) enjoys a great reputation among the Jainas, probably also belongs to this earlier period, This work treats in 12 chapters of the 12 Anuprekṣās or meditations, to which both monk and layman must devote themselves, in order to emancipate themselves little by little from 'Karman'.

– Indian Literature, Page 577.

दोहा ११ से १२ तक अन्यत्व भावना
दोहा १३ से १४ तक अशुचि भावना
दोहा १५ से १६ तक आश्रव भावना
दोहा १७ से १८ तक संवर भावना
दोहा १९ में निर्जरा का वर्णन है तथा
दोहा २० में लोक स्वभाव तथा
दोहा २१ में बोधिदुर्लभ तथा
दोहा २२ से ४४ तक धर्मभावना का वर्णन है ।
४५ वाँ दोहा उपसंहार रूप है ।

'तत्त्वार्थसूत्र' के अनुसार बारह भावनाओं का क्रम इस प्रकार है –

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभत्व और धर्मस्वाख्यातत्व–इनका अनुचिन्तन ।[१] इस तरह लक्ष्मीचंद की कृति में इसी परंपरा का अनुसरण है ।

कर्तृत्व-रचनासमय

मो. द. देसाई कृत 'जैन गूर्जर कविओ', (संशोधित, संवर्धित द्वितीय आवृत्ति, सम्पादक जयन्त कोठारी, भाग २, १९९७) इस ग्रंथ में दिगंबर सम्प्रदाय के सरस्वती गच्छ में हुए कवि सुमतिकीर्तिसूरि की दो कृतियाँ – 'धर्मपरीक्षा-रास' (रचना वि.सं. १६२५) और 'त्रेलोक्यसार-चोपाई' (रचना वि.सं. १६२७) का परिचय दिया गया है (पृष्ठ १४४-१४५) । उनमें सूमतिकीर्तिसूरि की गुरुपरंपरा इस प्रकार दी गई है -

विद्यानंदि, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचंद, ज्ञानभूषण, प्रभाचंद्र और सुमतिकीर्ति । इस परंपरा में लक्ष्मीचंद्रमुनि का नाम है । 'बारहक्खर-कक्क' में उसके कर्ता महाचंद्र मुनि ने अपने गुरु का नाम वीरचंद बताया है । इससे हम मान सकते हैं कि सुमतिकीर्तिसूरि ने अपनी गुरुपरंपरा में जो वीरचंद मुनि का नाम दिया है वह वीरचंद और महाचंद्रमुनि का गुरु वीरचंद दोनों एक ही हो और जो लक्ष्मीचंद्र का नामनिर्देश किया है वो ही 'अणुपेहा' के कर्ता हो ।

१. तत्त्वार्थसूत्र, पृ. २११

एक पीढी और दूसरी पीढी के बीच २० या २५ वर्ष का अन्तर हम मानें तो लक्ष्मीचंद्र का समय संम्भवतः विक्रम की १५वीं शताब्दी के बीच रखा जा सकता है। महाचंद्रमुनि का समय भी इसके बाद अर्थात् १६वीं शताब्दी में माना ज़ा सकता है। हमने 'बारहक्खर-कक्क' में पृष्ठ २३ पर उस रचना का समय भाषा के स्वरूप के आधार पर १३वीं शताब्दी के करीब होने की जो अकटल् की थी वह शायद सही न हो।

डॉ. भायाणी ने इस ओर मेरा ध्यान खिंचा उसके लिये मैं बहुत आभारी हूँ।

साहित्यिक विधा

दिगंबर परंपरा में जब कभी कोई आध्यात्मिक या धार्मिक विषय की रचना करते थे, तब उन रचनाओं को दोहाछंद में निबद्ध करने की प्रथा थी। जोइन्दु का 'परमप्पपयासु' रामसिंह मुनि का 'दोहा-पाहुड' और 'सावयधम्म दोहा' इत्यादि इसके उदाहरण है। इसमें सहजयानि सिद्धों जैसे की 'सरहपाद', 'कणहपाद' इत्यादि के दोहाकोशों की प्रेरणा भी थी। महयंद मुनि का बारहक्खर कक्क' और यह लक्ष्मीचंद का 'दोहानुपेहा' भी दोहा बद्ध है।

रचना का स्वरूप और छंद

रचना दोहा छन्द में निबद्ध है। दोहा छन्द का स्वरूप इस प्रकार है-

प्रथम और तृतीय चरण की मात्राएँ १३।

द्वितीय और चतुर्थ चरण की मात्राएँ ११।

विषम चरण की १३ मात्राओं का स्वरूप :

६+४+३ (=⏑ ⏑ ⏑ अथवा ⏑ –)

नियम से अन्तिम तीन मात्राओं के पूर्व एक गुरु होता है। समचरण की ११ मात्राओं का स्वरूप :

६+४+१ (= ⏑)

नियम से अन्तिम लघु के पूर्व एक गुरु होता है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से देखेंतो इस कृति की भाषा भारतीय भाषाओं के सन्धिकाल के समय की होनी चाहिये । मूल भाषा में थोडा आधुनिकीकरण है। सरल भाषा में सीधा उपदेश दिया गया है ।

शैली

रचना की शैली सरल है । व्यापक वर्ग के समक्ष जैन धर्म की बारह भावनाओं को प्रस्तुत करने का आशय होने से यह स्वाभाविक है ।

अनुवाद

रचना का अनुवाद मूलपाठ अच्छी तरह समझा जाय, इस दृष्टि से मूलानुसार ही रखा है । जो हमने शुद्धि की है वह कहीं अर्थ की दृष्टि से या छन्द की दृष्टि से की है । जहाँ पर अर्थ नहीं बैठा सकें वहाँ हमने या तो अनुमान से अर्थ किया है, शंकासूचक प्रश्नार्थ रखा है या स्थान खाली रखा है ।

ऋण-स्वीकार

'अणुपेहा' की झेरोक्स-कापी हमें सुलभ कराने के लिये, उसका सम्पादन करने के लिये उपयोग करने की संमति देने के लिये हम अपभ्रंश साहित्य अकादमी (जैन विद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय श्री महावीरजी, जयपुर) के तथा अकादमी के संयोजक डॉ. कमलचन्द सोगाणी के अत्यन्त ऋणी हैं ।

उपरोक्त पुस्तक के मूलपाठ का अनुवाद करने में तथा उसके शुद्ध स्वरूप को समझने में डा. भायाणी सा. का समय-समय पर जो सहकार व मार्गदर्शन प्राप्त हुआ उसके लिये मैं अपना हार्दिक आभार ज्ञापित करती हूँ ।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिये पार्श्व शैक्षणिक और शोधनिष्ठ प्रतिष्ठान (अहमदाबाद) प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ ।

क्रिश्ना ग्राफिक्स, अहमदाबाद को सुन्दर छपाई के लिये धन्यवाद देती हूँ ।

प्रीतम सिंघवी

अणुपेहा

पणवउ सिद्ध-महारिसिहि, जे पर-भावह मुक्क ।
परमानंद-परिट्ठिया, चउ-गइ-गमणहं चुक्क ॥१॥

जइ वीहहि चउ-गइ-गमण, तो जिण-उत्तु करेहि ।
दो-दह अणुपेहा मुणहि, लहु शिव-सुक्खु लहेहि ॥२॥

जलुवुच्छउ ? जीविउ चवलु, धणु जोवणु तडि-तुल्लु
इसउ जाणिवि मा गवँहि, माणस-जम्मु अमुल्लु ॥३॥

'जइ नित्तु वि जाणियइ वुह, तो परिहरहि अणित्तु ।
''तें कारणि नित्तु हि मुणहि, इम सुय-केवली वुत्तु ॥४॥

असरणु जाणहि सयल वुह, जीवह सरणु न कोई ।
दंसण-णाण-चरित्त मउ, अप्पा अप्पउ जोइ ॥५॥

दंसण-णाण-चरित्तं मउ, अप्पा सरणु मुणेहि ।
अण्णु ण सरणु वियाणि तुहुं, जिणवर एम भणेहि ॥६॥

तइलोउ वि नहु सरणु वुह, हउं कहु सरणहो जामि ।
इम जाणेविणु थिरु रहिय, जि (?) तइलायहु सामि ॥७॥

अनुवाद

(१) जो सिद्ध और महर्षि पर-भाव से मुक्त हैं। परमानन्द में स्थित हैं। और चार प्रकार की सांसारिक गति से मुक्त हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

(२) यदि तू चार प्रकार की गतियों मे आवन जावन से डरता हो तो जिनवर का कहना कर। तू बारह अनुप्रेक्षा को जान ले जिसके फलस्वरूप तू सत्वर मोक्ष-सुख पायेगा।

अनित्य भावना

(३)....., जीवन चंचल है और धन एवं यौवन बीजली के समान क्षणिक है। ऐसा जानकर तू अमूल्य मनुष्य जन्म गवाँ न दे।

(४) हे ज्ञानी (बुद्ध) ! यदि जो नित्य है उसको जाना गया हो तो जो अनित्य है उसका तू त्याग कर। इसी कारण तू नित्य का स्वरूप ही समझ। ऐसा श्रुत केवली ने कहा है।

अशरण भावना

(५) हे ज्ञानी ! सकल वस्तु शरण रहित है ऐसा तू समझ ! अतः इसी कारण जीव का भी कोई शरण नहीं है। तो तू स्वयं आत्मा दर्शन, ज्ञान और चारित्र स्वरूप है ऐसा जान।

(६) दर्शन, ज्ञान और चारित्रमय आत्मा शरण है ऐसा तू जान। दूसरे किसी को तू शरण मत समझ। ऐसा जिनवर कहते हैं।

संसार भावना

(७) हे ज्ञानी, सारा तीन लोक भी शरण रूप नहीं है। तो 'मैं किसके शरण में जाउं'। ऐसा जानकर तीन लोक का स्वामी को तू हृदय में धारण कर।

पंच-पयारहिं परिभमइ, पंचहि वंधिउ सोइ ।
'जाम ण अप्पु मुणेइ फुडु, एम भणंति हु जोइ ॥८।

एक्कल्लउ गुण- गण निलउ, वीयउ अत्थि न कोइ ।
मिच्छा-दंसण-मोहियउ, चउ-गइ हिंडइ सोइ ॥९॥

जइ सडुंसण्णु [सो] लहइ, तो पर-भाव जोएइ ।
एकल्लु सिव-सुहु लहइ, जिणवर एम भणेहि ॥१०॥

अण्णु सरीरु मुणेहि जिय, अप्पा केवल अण्णु ।
तो अण्णु वि सयलु वि चयहि, अप्पा अप्पउ मण्णु ॥११॥

जिम कट्ठहं डहणहं मुणइं, वै सादरु फुडु होइ ।
तिम्म कम्महं डहणहं भविय, अप्पा अण्णु ण कोइ ॥१२॥

सत्थु धाउ म पुग्गलु वि, किमी कुल असुइ-णिवासु ।
तिह णाणिउ किम रइ करइ, जो छंडइ भव-पासु ॥१३॥

असुइ सरीरु मुणेहि जइ, अप्पा णिम्मलु जाणि ।
तो असुइ वि पुग्गल चयहि, एम भणंतउ णाणि ॥१४॥

जो सुसहाउ चए वि मुणि, पर-भावहं परणेवि ।
सो आसउ जाणेहि तुहुं, जिणवरु एम भणेइ ॥१५॥

(८) पांच इन्द्रियों से, निबद्ध वह जीव पांच प्रकार से भ्रमण करता है, जब तक वह स्पष्ट रूप से आत्मा को नहीं जानता - ऐसा योगी लोग कहते हैं ।

एकत्व भावना

(९) वह जीव अनेक गुणों का आश्रय रूप अकेला ही है । दूसरा कुछ (उसका संगी साथी) नहीं है । वह मिथ्या दर्शन से मोहित होकर चार गतियों में भ्रमण करता है ।

(१०) यदि जीव सम्यक् दर्शन पाता है तो वह पर-भाव का त्याग करता है । वह अकेला शिव-सुख को पाता है । ऐसा जिनवर कहते हैं ।

अन्यत्व भावना

(११) हे जीव ! शरीर को तू अन्य समझ और आत्मा को (केवल) अन्य समझ । इसी कारण दूसरे सभी को तू त्याग दे । और आत्मा का तू स्वयं मनन कर ।

(१२) जैसे काष्ट को जलाने के लिये स्पष्ट रूप से अग्नि होता है- वैसे (लोग) समझते हैं । इसी तरह कर्मों को जलाने के लिये हे भव्य ! आत्म के सिवाय दूसरा कोई नहीं होता ।

अशुचि भावना

(१३) ..... पुद्गल भी कृमी कुल के कीडे और अशुचि का वास होता है । इसी कारण यदि ज्ञानी भव के पार्श्व को तोडना चाहता है, इससे मुक्त होना चाहता है तो उसमें आसक्ति क्यों रखे ।

(१४) यदि तू शरीर अशुचि है ऐसा जानता है तो आत्मा निर्मल है ऐसा जान । इसी कारण अशुचि पुद्गल का तू त्याग कर । ऐसा ज्ञानी कहता है ।

आश्रव भावना

(१५) हे मुनि जो अपने स्वभाव को छोडकर अन्य भाव.... उसको तू आश्रव जान ऐसा जिनवर कहते हैं ।

आसउ संसारहं मुणहिं, कारणु अण्णु ण कोइ ।
इम जाणेप्पिणु जीव तुहुं, अप्पा अप्पउ जोइ ॥१६॥

जो परु जाणइ अप्प परु, जो पर-भाव चएइ ।
सो संवरु जाणेहि तुहुं, जिणवरु एम भणेइं ॥१७॥

जइ जिय संवरु तुह करहि, तो सिव सुक्ख लहेहि ।
अण्णु वि सयल परिचयहि, जिणवरु एम भणेहि ॥१८॥

सहजाणंद परिट्ठिया, जे पर-भाव न लिंति ।
ते सुह असुह वि णिज्जरहिं, जिणवरु एम भणंति ॥१९॥

सु सरीरु वि तइलोउ मुणि, अण्णु ण बीयउ कोइ ।
जहं आधार परट्ठियउ, सो तुहुं अप्पा जोई ॥२०॥

सो दुल्लहु लाहु वि मुणहि, जो परमप्पह लाहु ।
अण्णु ण दुल्लहु किंपि तुह, णाणी बोलइ साहु ॥२१॥

पुणु पुणु अप्पा झाइ ज्जइ, मण, वय, काय, विसुद्ध ।
राय रोस वे परिहरिवि, जइ चाहहि सिव सिद्धि ॥२२॥

राय रोस वे परिहरिवि, अप्पा अप्पउ जोइ ।
जिण - सामिउ एमइं भणहिं, सहजि पिउपज्जइ सोइ ॥२३॥

(१६) संसार का कारण आश्रव है ऐसा तू जान। दूसरा कोई कारण नहीं है। हे जीव, तू ऐसा जान स्वयं आत्मा को देख।

संवर भावना

(१७) जो आत्मा और पर अलग-अलग है ऐसा जानता है और यदि पर-भाव का त्याग करता है तब वह संवर है ऐसा तू जान। ऐसा जिनवर ने कहा है।

(१८) हे जीव, यदि तू संवर करेगा तो शिव-सुख पावेगा। दूसरा सबका तू त्याग कर। जिनवर ऐसा कहते हैं।

निर्जरा

(१९) जो लोग सहजानन्द में अच्छी तरह स्थित है और जो पर-भाव का ग्रहण नहीं करता है वे सुख और असुख दोनों ही की निर्जरा करते हैं, जिनवर ऐसा कहते हैं।

लोक स्वभाव

(२०) अपना शरीर और तीन लोक भी अन्य है ऐसा तू समझ। जिनका आधार जो है उस आत्मा को तू देख क्योंकि (इसके बिना) दूसरा कोई नहीं हैं।

बोधिदुर्लभ

(२१) जो परमात्मा का लाभ है उसको तू दुर्लभ लाभ ही समझ। तेरे लिये और कुछ भी दुर्लभ नही है। ऐसा ज्ञानी साधु कहते हैं।

धर्म भावना

(२२) यदि तू शिव-सिद्धि चाहता हो तो मन, वचन और काया से विशुद्ध होकर, द्वेष और दोष दोनों को त्याग करके आत्मा का बार-बार ध्यान करना चाहिये।

(२३) तू राग और द्वेष दोनों का त्याग करके स्वयं आत्मा को देख जिन स्वामी ऐसा कहते हैं कि वह सहज भाव से उत्पन्न होता है।

जो जोवइ सो जोइयइ, अण्णु ण जोयइ कोइ ।
इम जाणेप्पिणु सम रहहि, सइं पहु पयडउ होइ ॥२४॥

को जोवइ को जोइयइ. अप्पु ण दीसइ कोई ।
सो अखुंडु जिणउ त्तियउ, एम भणंति हु जोइ ॥२५॥

परम समाहि परिट्ठि यहं, जो उप्पज्जइ कोइ ।
सो अप्पा जाणेहि तुहुं, एम भणंतिहु जोइ ॥२६॥

जो सुण्णुवि सो सुण्णु मुणि, अप्पा सुण्ण ण होइ ।
सुण्ण सहावें परिणवइ, एम भणंतिहुं जोइ ॥२७॥

सुंण्णु वि सहावें परिणवइ, पर भावा जिण उत्ता ।
अप्प सहावे सुण्ण णवि, इम सुय-केवलि वुत्तु ॥२८॥

अप्प-सरुवह लइ रहहिं, छंडहिं सयल उप्पाधि ।
भणइ जोइ जोइहिं भणिउ, जीवहं एह समाधि ॥२९॥

सो अप्पा मुणि जीव तुहुं, केवल-णाण-सहाव ।
भणइ जोइ जोइहिं भणिउ, जइ चाहहि सिव-लाहु ॥३०॥

जोइ जोउ विचारि, सम-रस भाइ परिट्ठियउ ।
अप्पा अणु विचारि, भणइ जोइ जोइहिं भणिउ ॥३१॥

(२४) जो देखता है वही देखा जाता है और कोई देखता नहीं है। ऐसा जानकर सम भाव में रहना, जिस तरह प्रभु स्वयं प्रगट होता है।

(२५) कौन देखता है और कौन देखा जाता है। (इसी तरह) कोई भी आत्मा को ऐसा देख नहीं पाता (?) क्योंकि सो (आत्मा) तो अखंड ही है, न कि भिन्न-भिन्न (?) ऐसा जोगी निश्चित रूप से कहते हैं।

(२६) परम समाधि में जो रहते हैं तब जो कोई प्रगट होता है उसको तू आत्मा समझ ऐसा ही निश्चित रूप से जोगी कहते हैं।

(२७) जो शून्य ही है उसको शून्य समझ। आत्मा शून्य नहीं है। शून्य का परिणाम स्वभाव से होता है ? ऐसा जोगी कहते हैं।

(२८) शून्य स्वभाव से ही प्रभाव से परिणित होता है ऐसा जिन ने कहा है। आत्मा स्वभाव से शून्य नहीं है ऐसा शुद्ध केवली ने कहा है।

(२९) जोगी कहता है - (पूर्ववर्ती) जोगीयों ने कहा है कि जब (योगी लोग) आत्म स्वरूप के लय में रहते हैं अर्थात् उसमें लीन रहते हैं, और जब वे सब उपाधियों को छोड देते हैं तब जीवों के लिये यह (सच्ची) समाधि है।

(३०) जोगी कहता है- (पूर्ववर्ती) जोगीयों ने कहा है कि यदि तुम मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो जिसका स्वभाव केवल ज्ञान है उसको हे जीव, तू आत्मा जान। (वह आत्मा है, हे जीव, ऐसा तू जान)

(३१) जोगी कहता है- (आगेके) जोगीयों ने कहा है कि हे योगी सम रस भाव में स्थिर रहना वही योग है ऐसा हे योगी तू समझ ।

जोई जोऐं जोइ, जो जोइज्जिइ सो जु तुहुं ।
अण्णु ण विइयउ कोइ, भणइ जोइ जोइहिं भणिउ ॥३२॥

सोहं सोहं सो जि हउं, पुणु-पुणु अप्पु मुणेइ ।
मोखह कारण जोइया, अण्णु ण सो चिंतेइ ॥३३॥

धम्म मुणिज्जइ एकु परु, जो चेयण परिणामु ।
पुणु पुणु अप्पा भावियइ, सो सासय सुह-धामु ॥३४॥

माइ लूय विडंवियउ, णो इछहि णिव्वाणु ।
तो ण समीहइ शु तत्तु तुहुं, जो तइ लोय पहाणु ॥३५॥

हत्थ-अहुट्ठ जु देवली, तहिं सिवसंति मुणेहिं ।
मूढा देउलि देउ णवि, भुल्ला कांइ भमेहि ॥३६॥

जो जाणइ ते जाणिवउ, अण्णु ण जाणउ कोइ ।
धंधइ पडियउ सयलु जगु, एम भणंतउ जोइ ॥३७॥

जो जाणइ सो जाणिवउ, यहु संसारु असारु ।
सो झाइ ज्जइ एक्कउ परु, जो तइ लोयहं सारु ॥३८॥

अज्झवसाण निमित्तिण, [वि] जो वंधि ज्जइ कम्मु ।
सो मुंचि ज्जइ तो जि परु, जइ लब्भइ जिणु धम्मु ॥३९॥

(३२) जोगी कहता है- (आगे के) योगीयोंने कहा है कि- हे योगी योग दृष्टि से तू देख कि जो देखा जाता है (जिसका तू दर्शन करता है) वह तू ही है सो तुमसे भिन्न ऐसा कोई दूसरा नहीं है ।

(३३) "वह मै हूँ, वह मैं हूँ, मैं वह ही हूँ"- (योगी) ऐसा समझता है । हे योगी लोग, वह मोक्ष प्राप्ति का कोई दूसरा कारण हो ऐसा नहीं विचारता ।

(३४) जो चेतन का (अंतिम) परिणाम रूप है (?) उसको एक मात्र उत्तम धर्म जानना चाहिये । आत्मा की वारम्वार भावना करना (ध्यान करना) वही शाश्वत सुख का स्थान है ।

(३५) हे भाई, पंच महाभूतो से भ्रान्त हुआ तू निर्वाण की इच्छा नहीं रखता है । इसी कारण जो तीन भुवन का प्रधान तत्त्व है उसको (जानना नहीं चाहता है ।

(३६) जो ढाई हाथ की देउकुलिका है (अर्थात् यह मानव शरीर) वहीं शिव-शान्ति (निवास करता है) ऐसा तू समझ । हे मूढ देवल में देव है ही नहीं । तू भूला क्यों भटकता है ।

(३७) जिसको ज्ञान होता है उसको जानना चाहिये, दूसरा जानने वाला कोई नहीं है । सकल जगत मिथ्या प्रवृत्ति में (झंझाल में) फसा हुआ है । योगी ऐसा कहता है ।

(३८) जिसको ज्ञान होता है उसको ही जानना चाहिये । यह संसार असार है, तो जो तीन भुवन का सार है एक मात्र उसका ही ध्यान करना चाहिये।

(३९) जो कर्म विचारणा के निमित्त से भी बंधा जाता है । वह यदि जिन धर्म की प्राप्ति हो तभी ही छूट सकता है (मुक्त होना संभव है) ।

जो सुह-असुह-वि वज्जियउ, सुद्दु सचेयण-भाउ ।
सो धम्मु वियाणहिं जिय, णाणी बोल्लइ साहु ॥४०॥

धेयहं धारण-परिरहिउ, जासु पइट्ठइ भाउ ।
सो कम्में नहि वंधियइ, जहिं भावहि तहिं जाउ ॥४१॥

सो द्रोहक अप्पाण यह, अप्पा जो ण मुणेइ ।
जो जायइ-तह परम-पउ, जिणवरु एम भणेइ ॥४२॥

वउ तउ णियम करंतयहं, जो न मुणइ अप्पाणु ।
सो मिछादिठीह वइ, णहु पावइ णिव्वाणु ॥४३॥

जो अप्पा णिम्मलु मुणइ, वउ-तउ-सीलु-समाणु ।
सो कम्म खुउ फुडु करइ, पावइ लहु णिव्वाणु ॥४४॥

ए अणुपेहा जिण-भणिय, णाणी बोल्लइ साहु ।
ते भाविज्जहि झीव तुहुं, जइ चाहहि सिव लाहु ॥४५॥

अंत में निदेशः इति द्वादशांग अनुप्रेक्षा लक्ष्मीचंद्र कृता समाप्तं ॥

(४०) ज्ञानी साधु कहते हैं कि जो शुभ और अशुभ से रहित है और जो शुद्ध चेतन भाव है वही हे जीव धर्म है ऐसा तू जान ।

(४१) जिसका भाव ध्ये और धारणा से रहित होकर स्थिर रहता है वह कर्म से नहीं बंधा जाता । तो जहां आप जाना चाहे वहां जाए (जिस मार्ग पर आप चलना चाहे वही तय करले)

(४२) जिनवा ऐसा कहते हैं कि जो आत्मा को नहीं जानता वह अपना ही द्रोह करने वाला है । जो (आत्मा का) ध्यान करता है उसको परमपद की प्राप्ति होती है ।

(४३) व्रत, तप और नियम करते हुए भी जो आत्मा को नहीं जानता है वह मिथ्या दृष्टि होता है । और वह निर्वाण नहीं प्राप्त करेगा ।

(४४) जो व्रत, तप और शील के साथ निर्मल आत्मा को जानता है, सो निश्चित रूप से कर्म क्षय करता है । और शीघ्र निर्वाण प्राप्त करता है ।

उपसंहार

(४५) हे जीव, यदि तू शीव पद का लाभ चाहता है तो जिनवर ने कही हुई ये अनुप्रेक्षाओं की तू भावना कर ऐसा ज्ञानी साधु कहते हैं ।

मूलपाठ की शुद्धि

मूलपाठ	शुद्धि	मूलपाठ	शुद्धि
पणविवि	पणवउ	याणइ	जाणइ
भावाह	भावह	चएवि	चएइ
उत्त	उत्तु	जाणंवि	जाणेहि
मुणइं	मुणहि	लहेइ	लहेहि
माणसु	माणस	वयहि	चयहि
अमुलु	अमुल्लु	भणेंइ	भणेहि
वुहा	वुह	त्तइलोउ	तइलोउ
परिहरइ	परिहरहि	जहि	जहं
तंकारणि	तें कारणि	परमप्पइ	परमप्पह
सुइ	सुय	कंपि	किंपि
अणु	अण्णु	प्परदरिवि	परिहरिवि
महु	नहु	प्परहरिवि	परिहरिवि
सरणिहो	सरणहो	जिणु	जिण
जाइणे	जाणे	भणइ	भणहिं
त्तईलोयहु	तइलायहु	सहज्यिउप्प जइ	सहजि पिउप ज्जइ
सामिं	सामि	भणंत	भणंति
णु	ण	परट्ठि	परिट्ठि
मिछा	मिच्छा	उप्पजइ	उप्पज्जइ
हिंढइ	हिंडइ	भणंतहुं	भणंतिहु
सदंसणु	सड्ढंसण्णु	सुणिवि	सुण्णुवि
एकलउ	एकल्लु	सुणु	सुण्णु
वयहि	चयहि	सुण	सुण्ण
मणुं	मण्णु	सुइ	सुय
किम	किमी	केवल	केवलि

मूलपाठ	शुद्धि	मूलपाठ	शुद्धि
रहहि	रहहिं	जाणियउं	जाणिवउ
छंडहि	छंडहिं	जाणइ	जाणउ
भणिउ	भणिउ	भणंतो	भणंतउ
णाणु	णाण	जाणियउ	जाणिवउ
भायउ	भाव	यहु	इहु
भणिओं	भणिउ	संसार	संसारु
जोइजइ	जोइज्जइ	एक्क	एक्कउ
भणिउं	भणिउ	निमित्तणइं	निमित्तिण
वियउ	विइयउ	जु	जि
प्पुणु-प्पुणु	पुणु-पुणु	लभइ	लब्भइ
एक	एकु	बोलइ	बोल्लइ
भायं	भाइ	धारुण	धारण
तथु	तत्तु	परिरहीयउ	परिरहिउ
समीहवि	समीहइ	णहं	नहि
हाथ	हत्थ	दोहउ	द्रोहक
जु	ज	सायंतह	जायइ तह
देवली	देवलिउ	परमप्पउ	परम-पउ
देवलि	देउलि	णिवाणु	णिव्वाणु
मूतलांह	मुल्ला	णिमलु	णिम्मलु
त्ते	सो	णिव्वाणुं	णिव्वाणु
		जिणु-भणइ	जिण-भणिय

टिप्पण

७ 'थिरु रहिय' के स्थान पर शायद 'धरु हियइ' होना चाहिये

७ 'जि' के स्थान पर 'जिणु' शायद हो ॥

२२ 'राग' के साथ 'द्वेष' आता है। 'रोष' के स्थान पर 'दोष' होना चाहिंये ।

(३६) तुलना कीजिये

हत्थ अहुट्टहं देवली वालहं णाहि पवेसु ।

संतु णिरजणु तहिं वसइ णिम्मलु होइ गवेसु ॥ पाहुड दोहा-९५

दोहानुक्रमणिका

अज्झवसाण निमित्तिण ३९
अण्णु सरीरू ११
अप्प सरुवह २९
असरणु जाणहि ५
असुइ सरीरु १४
आसउ संसारह १६
ए अणुपेहा ४५
एक्कलउ गुण ९
जइं वीहहि २
को जोवइ २५
जइ नित्तु ४
जइ जिय संवरु १८
जइ सडुंसण्णु १०
जलुवुच्छउ ? ३
जिम कटुहं १२
जो अप्पा णिम्मलु ४४
जोई जोऐं ३२
जो जाणइ ३७
जो जाणइ ३८
जोइ जोउ ३१
जो परु जाणइ १७
जो जोवइ सो २४
जो सुणिवि २७
जो सुसहाउ १५
जो सुह-असुह ४०
तइलोउ वि नहु ७
दंसण-णाण-चरित्त ६
धम्म मुणिज्जइ ३४
धेयह धारण-परिरहिउ ४१
पणवउसिद्ध-महारिसिहि १
पुणु पुणु २२
परम समाहि २६
पंच-पयारहि ८
माय लूय ३५
राय रोस २३
वउ तउ णियम ४३
सत्थु धाउ १३
सहजाणंद परिट्ठिया १९
सुण्णु वि सहावे २८
सु सरीरू २०
सो अप्पा मुणि ३०
सो दुल्लहु लाहु २१
सो द्रोहक ४२
सोहं सोहं ३३
हत्थ-अहुट्ठ ३६

संदर्भ सूचि

आचारांग

उत्तराध्ययन सूत्र

जैनेन्द्रसिद्धान्तकोष

कुन्दकुन्द अनुप्रेक्षा

कीर्तिकेयानुप्रेक्षा

तत्त्वार्थसूत्र

Dr. Pritam Singhvi (b. 1948) has been researching in Jainology. She is auther of several works like 'Hindī Jain Sāhitya mein Krishna Kā Ṣvarūp-vikās.' 'Samatvayog : Ek Samanvay Driṣṭi', 'Anekānta-vāda as the basis of Equanimity, Tranquality and Synthesis of Opposite View-points'. 'Aṇupehā', Her forth coming publication is 'Sadayvatsacarita' of harṣavardhanagaṇi.

Publications of the

Parshwa International Foundation for Research and Education

1.	Bārahakkhara-kakka of Mahācandra Muni Ed. H. C. Bhayani, Pritam Singhvi	1977
2.	Dohāṇuvehā Ed. Pritam Singhvi	1998
3.	Anekāntavāda Pritam Singhvi	1998
4.	Gāthā-mañjarī Translated by H. C. Bhayani	1998
5.	Sadayavatsa-kathā of Harṣavardhana-gaṇa	(forth coming)